दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

आरक्षित तिथि : 18.11.2013

उद्घोषित तिथि: 20.12.2013

रि.या.(सि) 1443/2012, सि.वि.आ. 3149/2012

जोस मेलेथ

..... याचिकाकर्ता

के माध्यम से: श्री जयंत त्रिपाठी, अधिवक्ता।

बनाम

भारत संघ और अन्य

..... प्रत्यर्थागण

के माध्यम से: प्र.सं.1 के लिए अधिवक्तागण,
श्री सुमित पुष्कर्णा के साथ श्री
गौरव शर्मा।

प्र.सं.2 के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता
श्री राकेश मुंजाल के साथ
अधिवक्ता, श्री राकेश कुमार
गर्ग।

यूजीसी के लिए श्री शशांक शेखर
के साथ अमितेश कुमार
अधिवक्ता।

प्र.सं.4 के लिए, वरिष्ठ
अधिवक्ता श्री आर. वेंकटरमणि

के साथ श्री मनीष गोयल,
अधिवक्ता।

कोरम:

माननीय श्री न्यायमूर्ति एस. रवींद्र भट
माननीय श्री न्यायमूर्ति नजमी वजीरी

श्री न्यायमूर्ति एस. रवींद्र भट

1. याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इन कार्यवाहियों में अधिकार पृच्छा रिट की मांग की है जिसमें कहा गया है कि चौथे प्रत्यर्थी (डॉ. एस शिवकुमार, जिन्हें आगे "शिवकुमार" कहा जाएगा) को भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली (आगे "आईएलआई") में शोध प्रोफेसर के रूप में अपना पद रखने का अधिकार नहीं है क्योंकि उन्होंने, याचिकाकर्ता के शब्दों में, ".....चयन समिति के समक्ष झूठे बयान और कपटपूर्ण गलत बयानी करके धोखाधड़ी से पद प्राप्त किया ..."। याचिकाकर्ता का आरोप है कि शिवकुमार की नियुक्ति वैधानिक नियमों के विपरीत थी क्योंकि उनके पास शोध प्रोफेसर के पद के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाले आईएलआई द्वारा जारी विज्ञापन और नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम ("यूजीसी विनियम") के संदर्भ में अपेक्षित योग्यता नहीं थी।

2. संक्षिप्त तथ्य यह है कि 2005 में जारी एक विज्ञापन के जवाब में, शिवकुमार और अन्य उम्मीदवारों ने आईएलआई में शोध प्रोफेसर के पद के लिए आवेदन किया था। शिवकुमार ने अपना आवेदन 03.10.2005 को प्रस्तुत

किया था। विज्ञापित पात्रता के अनुसार उम्मीदवार को "अच्छे अकादमिक रिकॉर्ड" वाला एक प्रतिष्ठित विद्वान होना चाहिए या उसके पास कानून में डॉक्टरेट की डिग्री या समकक्ष, "उच्च गुणवत्ता का प्रकाशित कार्य और कम से कम 55% अंकों या इसके समकक्ष ग्रेड के साथ लॉ में मास्टर डिग्री" और "विश्वविद्यालयों/कॉलेजों और उच्च शिक्षा के अन्य संस्थानों में 10 साल का स्नातकोत्तर शिक्षण/अनुसंधान" होना चाहिए। इसमें कोई विवाद नहीं है कि शिवकुमार ने 1990 में अपनी लॉ स्नातक की पढ़ाई पूरी की और उसके बाद केरल विश्वविद्यालय से एलएलएम पूरा किया, फिर 1999 में पीएचडी पूरी की। आवेदन पर कार्रवाई करने तथा चयन प्रक्रिया आयोजित करने के बाद, शिवकुमार को अनुसंधान प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति की पेशकश की गई तथा 20.02.2006 को नियुक्ति आदेश जारी होने के बाद उन्होंने कार्यभार संभाला। वर्तमान याचिकाकर्ता ने 19.05.2010 को आईएलआई को अभ्यावेदन देकर पहली बार आरोप लगाया कि शिवकुमार इस पद पर रहने के हकदार नहीं थे। बाद में, 01.02.2012 को, उन्होंने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका दायर की, जिसे बाद में 24.02.2012 को वापस ले लिया गया, हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें इस न्यायालय में जाने की स्वतंत्रता दी थी। नतीजतन, उन्होंने वर्तमान रिट याचिका दायर की।

3. यह तर्क दिया गया है कि शिवकुमार ने पद के लिए आवेदन करते समय धोखाधड़ी वाला बयान दिया था कि उनके पास स्नातकोत्तर शिक्षण में पर्याप्त अनुभव है, (आवश्यक विज्ञापित योग्यताओं में से एक), हालांकि वास्तव

में, याचिकाकर्ता का आरोप है, उन संस्थानों द्वारा जारी किए गए दस्तावेज जिनमें शिवकुमार ने पहले पढ़ाने का दावा किया है, स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि उनके पास उनके द्वारा बताए गए अपेक्षित अनुभव नहीं थे। याचिकाकर्ता का तर्क है कि हालांकि उनके आवेदन के अनुलग्नक 1 में, शिवकुमार ने कहा था कि उनके पास 11 वर्ष और 1 महीने का स्नातकोत्तर शिक्षण अनुभव है (केरल विधि अकादमी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम में 8 वर्ष और 9 महीने, राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय, कोलकाता में 5 महीने और हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, रायपुर में 1 वर्ष और 11 महीने), उनके पास ऐसा कोई शिक्षण अनुभव नहीं था और उन्होंने चयन समिति के समक्ष गलत प्रतिनिधित्व किया। इसके लिए याचिकाकर्ता ने सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत तीनों संस्थानों से प्राप्त जवाबों पर भरोसा किया है, जिन्हें रिकॉर्ड में लाया गया है। राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय के संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क है कि शिवकुमार ने उस विश्वविद्यालय में कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया और वास्तव में, अनुबंध का उल्लंघन किया; रायपुर के हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क है कि शिवकुमार विश्वविद्यालय में केवल तदर्थ आधार पर काम कर रहे थे; केरल विधि अकादमी के संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क है कि शिवकुमार ने कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया और उनके रोजगार की अवधि 6 वर्ष, 11 महीने और 19 दिन थी, जबकि उनके पास 8 वर्ष और 9 महीने का स्नातकोत्तर शिक्षण अनुभव है। इन तथ्यों के मद्देनजर याचिकाकर्ता का तर्क है

कि विभिन्न धोखाधड़ीपूर्ण प्रदर्शन किए गए थे, जिसने चयन समिति को शोध प्रोफेसर के रूप में उनकी नियुक्ति की पुष्टि करने में गुमराह किया। यह, किसी भी कीमत पर, अनुशासनात्मक कार्यवाही और शिवकुमार द्वारा धारण किए गए पद से हटाने को उचित ठहराता है।

4. याचिकाकर्ता ने यह भी तर्क दिया है कि शिवकुमार को किसी अन्य कारण से भी उनके पद से हटाया जा सकता है, अर्थात् वे यूजीसी (विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति और कैरियर उन्नति के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यताएं) विनियम, 2000 (इसके बाद "2000 यूजीसी विनियम") के अनुसार प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होने के योग्य नहीं थे। याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत किया है कि इन विनियमों के अनुसार, विधि में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होने के लिए न्यूनतम योग्यता यह है कि उम्मीदवार: (i) उच्च गुणवत्ता के प्रकाशित कार्य वाला एक प्रख्यात विद्वान होना चाहिए, (ii) सक्रिय रूप से अनुसंधान में संलग्न होना चाहिए; (iii) स्नातकोत्तर शिक्षण में 10 वर्ष का अनुभव और/या (iv) विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में शोध का अनुभव, जिसमें डॉक्टरेट स्तर पर शोध का मार्गदर्शन करने का अनुभव भी शामिल है; या (v) स्थापित प्रतिष्ठा वाला एक उत्कृष्ट विद्वान जिसने ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया हो। याचिकाकर्ता का तर्क है कि डॉ. शिवकुमार:

“नियुक्ति के समय निश्चित रूप से उनके पास उपर्युक्त में से कोई भी योग्यता नहीं थी और इसलिए उनकी नियुक्ति कानूनी नियमों के विपरीत है।”

5. इस दलील को पुष्ट करने के लिए, यह तर्क दिया गया है कि शिवकुमार के आवेदन से पता चलता है कि: (i) वे उच्च गुणवत्ता के प्रकाशित कार्य वाले प्रख्यात विद्वान नहीं थे। साक्षात्कार के समय उनके द्वारा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था जिससे पता चले कि वे उच्च गुणवत्ता के प्रकाशित कार्य वाले प्रख्यात विद्वान थे; (ii) वे सक्रिय रूप से अनुसंधान में शामिल नहीं थे। साक्षात्कार के समय उनके द्वारा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था जिससे पता चले कि वे सक्रिय रूप से अनुसंधान में शामिल थे; (iii) उन्हें स्नातकोत्तर शिक्षण का कोई पर्याप्त अनुभव नहीं था। वास्तव में, आवेदन में उन्होंने झूठा और भ्रामक बयान दिया कि उनके पास स्नातकोत्तर शिक्षण में 11 वर्ष और 9 महीने का अनुभव है; (iv) उन्हें विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में अनुसंधान का कोई अनुभव नहीं था, जिसमें डॉक्टरेट स्तर पर अनुसंधान का मार्गदर्शन करने का अनुभव भी शामिल है; (v) वह कोई प्रतिष्ठित विद्वान नहीं थे, जिन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया हो। साक्षात्कार के समय उनके द्वारा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे पता चले कि वे एक उत्कृष्ट विद्वान हैं, जिनकी प्रतिष्ठा स्थापित है तथा जिन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

6. याचिकाकर्ता का कहना है कि उन्होंने 19.05.2010 को आईएलआई के निदेशक को भी एक अभ्यावेदन भेजा था, जिस पर अभी तक कोई कार्रवाई नहीं की गई है (जैसा कि आईएलआई द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत पूछे गए प्रश्न के दिनांक 10.10.2011 के उत्तर (सं. आईएलआई/आरटीआई/2011/4469) से स्पष्ट है)।

7. याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों के जवाब में, शिवकुमार के अधिवक्ता ने सबसे पहले आग्रह किया कि वर्तमान कार्यवाही प्रेरित की गई है। यह प्रस्तुत किया गया कि रिट याचिका, जैसा कि यह दावा करती है कि यह अधिकार पृच्छा की रिट है, कायम नहीं रखी जा सकती, क्योंकि शिवकुमार का चयन और नियुक्ति किसी वैधानिक पद पर नहीं थी। यह तर्क दिया गया कि बिना किसी *सुने जाने के अधिकार* के, याचिकाकर्ता नियुक्ति को खारिज करने का दावा नहीं कर सकता, क्योंकि वह उम्मीदवार नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि शिवकुमार का चयन नियमों के भीतर था, और पांचों उम्मीदवारों में से प्रत्येक द्वारा उनके शिक्षण और शोध अनुभव के बारे में प्रस्तुतियों के बाद किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की शिकायतों के कारण, शिवकुमार को वांछित शिक्षण/अनुसंधान अनुभव को साबित करने के लिए प्रमाणित/सत्यापित दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, और उन्होंने चयन समिति को निम्नलिखित दस्तावेज उपलब्ध कराकर ऐसा किया: (क) 03.10.1994 का केरल विश्वविद्यालय आदेश, जिसमें शिवकुमार को व्याख्याता नियुक्त किया गया; (ख) 01.08.1994 से

19.05.2003 तक डॉ. शिवकुमार की सेवा की अवधि को नोट करते हुए, केरल विधि अकादमी कॉलेज के सचिव डॉ. एन. नारायणन नायर द्वारा जारी 25.02.2005 का प्रमाण पत्र; (ग) 01.01.2001 का केरल विश्वविद्यालय आदेश जिसमें शिवकुमार को पीएचडी छात्रों के लिए शोध मार्गदर्शक के रूप में मान्यता दी गई। (घ) पश्चिम बंगाल राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा जारी दिनांक 18.10.2003/19.10.2003 का प्रमाण पत्र, जिसमें दर्शाया गया है कि प्रोफेसर शिवकुमार 20.05.2003 से विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं; (ङ) हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा दिनांक 20.10.2003 को जारी किया गया कार्यालय आदेश, जिसमें दर्शाया गया है कि शिवकुमार की नियुक्ति उसी तिथि से एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में हुई है।

8. इन दस्तावेजों के आधार पर, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि केरल विधि अकादमी से आरटीआई आवेदन के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए जाने वाले दस्तावेज शिवकुमार द्वारा चयन समिति को प्रदान किए गए दस्तावेज के विपरीत हैं, और उन्हें किसी भी निर्णय का आधार नहीं बनाया जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि इन आरटीआई प्रतिक्रियाओं में हेरफेर किया गया था, और इसलिए, उन्हें अनदेखा किया जाना चाहिए। इसके अलावा, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चयन प्रक्रिया में यूजीसी की कोई भूमिका नहीं है, और इस तरह, इन पदों के लिए विज्ञापन द्वारा चयन मानदंड निर्धारित किए जाते हैं। इसके लिए विद्वान अधिवक्ता ने 13.01.2010 के

यूजीसी के पत्र पर भरोसा किया, जिसमें यूजीसी ने संकेत दिया था कि चयन की प्रक्रिया में उसकी कोई भूमिका नहीं होगी। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया कि 2000 यूजीसी विनियम मई, 2006 में अपनाए गए थे, जबकि पद 2005 में ही भर दिया गया था, और इस प्रकार, उन विनियमों के आवेदन का सवाल ही नहीं उठता।

9. अंत में, यह प्रस्तुत किया गया कि आईएलआई एक शोध-आधारित शिक्षण संस्थान है, जो अन्य विश्वविद्यालयों से अलग है, और इस प्रकार, आईएलआई की बात आने पर यूजीसी के मानदंडों को अलग तरीके से देखा जाना चाहिए। इसके परिप्रेक्ष्य में, विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि शिवकुमार द्वारा प्रस्तुत आवेदन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वह उच्च गुणवत्ता के प्रकाशित कार्य वाले प्रख्यात विद्वान थे, और एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उनकी स्थापित प्रतिष्ठा थी, जिन्होंने कानून के ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तदनुसार, डॉ. शिवकुमार के पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आईएलआई द्वारा शोध प्रोफेसर के रूप में उनका चयन न केवल जारी किए गए विज्ञापन की शर्तों और आईएलआई के उपनियमों के भीतर था, बल्कि योग्य भी था।

10. इस रिट याचिका में उठने वाले सवालों पर विचार करने से पहले, कुछ पृष्ठभूमि जानना ज़रूरी है। सबसे पहले, यह माना गया है कि आईएलआई को 29.10.2004 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 3 के तहत मानद (डीम्ड) विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया था (सरकारी

अधिसूचना सं. एफ. 9-9/2001-यू.3 के अनुसार), और इसलिए, यूजीसी विनियम आईएलआई पर लागू होते हैं। 2000 यूजीसी विनियम यूजीसी द्वारा यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26(1) के तहत बनाए गए थे। ये विनियम यूजीसी से संबद्ध विश्वविद्यालयों और संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता निर्धारित करते हैं, यानी इस मामले में आईएलआई। यह 2000 यूजीसी विनियम की धारा 1(ii) से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया है कि ये विनियम:

"यह नियम केन्द्रीय अधिनियम, प्रान्तीय अधिनियम या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित या निगमित प्रत्येक विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2 के खण्ड (च) के अधीन सम्बन्धित विश्वविद्यालय के परामर्श से आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त प्रत्येक संस्था या सम्बद्ध महाविद्यालय तथा उक्त अधिनियम की धारा 3 के अधीन विश्वविद्यालय मानी जाने वाली प्रत्येक संस्था पर लागू होगा।" (जोर दिया गया)

11. 2005 में, एक विज्ञापन (डीएवीपी 1439(4) 2005) द्वारा, आईएलआई ने अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से, निम्नलिखित शर्तों के साथ, शोध प्रोफेसर के पद के लिए विज्ञापन दिया:

"भारतीय विधि संस्थान में निम्नलिखित पदों को भरने के लिए निर्धारित प्रपत्र में 17.10.2005 तक आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं।"

(1) शोध प्रोफेसर (2 पद) - अनारक्षित: 16400-45020900-500-22400। आयु सीमा 62 वर्षों तक।

आवश्यक योग्यता: अच्छे अकादमिक रिकॉर्ड वाला प्रतिष्ठित विद्वान या कानून में डॉक्टरेट की डिग्री या उच्च गुणवत्ता का समकक्ष प्रकाशित कार्य और कम से कम 55% अंकों के साथ कानून में मास्टर डिग्री या इसके समकक्ष ग्रेड विश्वविद्यालयों/कॉलेजों और उच्च शिक्षा के अन्य संस्थानों में स्नातकोत्तर शिक्षण/अनुसंधान का 10 साल का अनुभव। (जोर दिया गया)।

12. अपने आवेदन पत्र में, शिवकुमार ने अनुलग्नक I में "विश्वविद्यालय या डिग्री कॉलेजों में शिक्षण अनुभव" शीर्षक के सामने निम्नलिखित विवरण दर्ज किए: (1) 01.08.1994 और 19.05.2003 के बीच, 8 वर्ष और 9 महीने की अवधि के लिए, केरल विधि अकादमी में स्थायी व्याख्याता के रूप में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाया। (2) 5 महीने की अवधि के लिए, 20.05.2003 और 19.10.2003 के बीच, नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ ज्यूरिडिकल साइंसेज में स्थायी व्याख्याता के रूप में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाया। (3) 1 वर्ष और 11 महीने की अवधि के लिए, 20.10.2003 से, हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में स्थायी एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाया। इस प्रकार, आवेदन प्रविष्टि 17 के तहत, कुल 11 वर्ष और 2 महीने का शिक्षण अनुभव दर्ज करता है।

13. "शोध अनुभव" शीर्षक के विपरीत, शिवकुमार ने दावा किया कि उन्होंने केरल विश्वविद्यालय में "अतिरिक्त इयूटी" (यानी "परियोजना की प्रकृति") पर "मान्यता प्राप्त शोध मार्गदर्शक" के रूप में 4 साल और 9 महीने काम किया; हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में "अतिरिक्त इयूटी" पर "परियोजना

समन्वयक ” के रूप में 1 साल और 10 महीने काम किया। इसके अलावा, अपने आवेदन से जुड़ी “शैक्षणिक प्रोफाइल” में, शिवकुमार ने बारह शोध प्रकाशनों, चार पुस्तक समीक्षाओं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किए गए ग्यारह शोध पत्रों, साथ ही प्रस्तुत किए गए तीन शोध पत्रों (हालांकि व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत नहीं किए गए), राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किए गए विभिन्न शोध पत्रों, चार पुस्तक योगदानों सहित अन्य प्रकाशनों की सूची, उनके द्वारा आयोजित कार्यक्रम और लिए गए शैक्षणिक परियोजना का विवरण दर्ज किया।

विचारणीय बिंदु

14. इस मामले में दो प्रश्न विचारणीय हैं। पहला, क्या याचिकाकर्ता के पास इस मामले को उठाने का अधिकार है, और दूसरा, यदि है, तो क्या तथ्य अधिकार पृच्छा रिट जारी करने के लिए उचित हैं।

15. पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए, यह प्रस्ताव कि वैधानिक प्रावधानों/नियमों के उल्लंघन के लिए अधिकार पृच्छा की रिट लागू होती है, अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने हरि बंश लाल बनाम सहोदर प्रसाद महतो और अन्य, (2010) 9 एससीसी 655 में उल्लेख किया है:

"20. चर्चा और विश्लेषण से निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर सामने आते हैं:

(क) अधिकार पृच्छा के रिट को छोड़कर, सेवा मामलों में जनहित याचिका स्वीकार्य नहीं है।

(ख) अधिकार पृच्छा रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय को यह संतुष्ट होना होगा कि नियुक्ति वैधानिक नियमों के विपरीत है।

(ग) सरकारी सेवा में किसी पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता या अन्यथा नियुक्ति प्राधिकारी का कार्य है, न कि न्यायालय का, जब तक कि नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों/नियमों के विपरीत न हो।”

वास्तव में, वैधानिक नियमों के विपरीत नियुक्तियों के लिए अधिकार पृच्छा की रिट जारी की जा सकती है, जो अनुच्छेद 226 के तहत कानून का एक स्थापित सिद्धांत है, यह *द मोर मॉडर्न कोऑपरेटिव ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड बनाम वित्त आयुक्त और सचिव, हरियाणा सरकार और अन्य*, (2002) 6 एससीसी 269 और हाल ही में *सेंट्रल इलेक्ट्रिसिटी सप्लाय यूटिलिटी ऑफ ओडिशा बनाम धोबी साहू और अन्य*, 2013 (13) स्केल 47 में दिए गए निर्णयों से स्पष्ट है।

16. इस मामले में कथित तौर पर जिन नियमों का उल्लंघन किया गया है, यानी 2000 यूजीसी दिशानिर्देश, यूजीसी द्वारा अपने संचालित कानून, यानी यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26(1) के तहत बनाए गए थे, और इस प्रकार, वे वैधानिक स्वरूप रखते हैं। विशेष रूप से, धारा 26 में कहा गया है कि:

“आयोग, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुरूप विनियम बना सकेगा, जिसमें उन योग्यताओं को परिभाषित किया जाएगा जो विश्वविद्यालय के शिक्षण स्टाफ में नियुक्त किए जाने वाले किसी भी व्यक्ति से सामान्यतः अपेक्षित होंगी, शिक्षा की उस शाखा को ध्यान में रखते हुए जिसमें उससे शिक्षा देने की अपेक्षा की जाती है।”

17. इसलिए, वर्तमान में विचाराधीन 2000 यूजीसी विनियम, यूजीसी अधिनियम की धारा 26 के तहत अपने अधिकार का सख्ती से पता लगाते हैं, और जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने *को-ऑपरेटिव सेंट्रल बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम एडीसनल इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल और अन्य*, [1970] 40 कॉम्प कैस 206 (एससी) में मान्यता दी है, कि:

“10.....यदि कोई कानून सरकार या अन्य प्राधिकरण को नियम बनाने की शक्ति देता है, तो इस प्रकार बनाए गए नियम कानून की शक्ति रखते हैं और कानून के भाग के रूप में शामिल माने जाएंगे।” (जोर दिया गया)

18. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा *काशी प्रसाद बनाम जिला केंद्रीय सहकारी बैंक लिमिटेड, तिमकगढ़ और अन्य*, 1992 (1) एमपीजेआर 362 (“यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां कोई कानून, सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण को नियम बनाने के लिए अधिकृत करता है और नियम इस प्रकार बनाए जाते हैं, तो नियमों में कानून का बल होगा.....”) में विभिन्न संदर्भों में इसी तरह के निष्कर्ष निकाले गए हैं। इसके अलावा, यूजीसी के पत्र (डी.ओ. सन. एफ3-1/2000 (पीएस), दिनांक 4 अप्रैल, 2000) में 2000 के

विनियमों को पेश करते हुए विशेष रूप से कहा गया है कि:
 “यूजीसी द्वारा जारी किए गए नियम अनिवार्य प्रकृति के हैं और सभी विश्वविद्यालयों को इनका सख्ती से पालन करने की सलाह दी जाती है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के प्रबंधन के लिए इन नियमों को शामिल करने के लिए अपने कानून, अध्यादेश, नियम, विनियमन आदि में आवश्यक बदलाव करना ज़रूरी होगा।”

19. यह तथ्य कि यूजीसी विनियम, धारा 26 के तहत यूजीसी में निहित वैधानिक प्राधिकार पर अनिवार्य हैं, न कि अनुशासनात्मक, इस प्रस्ताव को और अधिक बल प्रदान करता है कि 2000 के विनियम, वैधानिक शक्ति रखते हैं, और इस प्रकार, उन्हें अधिकार पृच्छा के रिट के माध्यम से लागू किया जा सकता है। वास्तव में, यूजीसी विनियमों के उल्लंघन के लिए अधिकार पृच्छा के रिट के मामलों में सुनवाई के अधिकार यह प्रश्न *डी गणेशन बनाम तमिलनाडु राज्य*, 2012 (2) सीटीसी 177 में मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष आया था, जहां याचिकाकर्ता ने अधिकार पृच्छा के रिट के माध्यम से डॉ अंबेडकर सरकारी लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल के पद पर एक व्यक्ति की नियुक्ति पर सवाल उठाया था, इस आधार पर कि लागू यूजीसी विनियमों (यानी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर यूजीसी विनियम और उच्च शिक्षा में मानकों के रखरखाव के उपाय 2001, जो सिद्धांत रूप में, इस मामले में विचाराधीन 2000 यूजीसी विनियमों के समान हैं) का उल्लंघन किया गया था। उस मामले में नियुक्ति

को खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि रिट याचिका स्वीकार्य है:

"19. यह तर्क देते हुए कि सेवा मामलों में जनहित याचिका नहीं होती है, तीसरे प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने हरि बंश लाल बनाम सहोदर प्रसाद महतो 2010 (9) एससीसी 655 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। लेकिन उक्त निर्णय तीसरे प्रत्यर्थी के खिलाफ जाता है, जैसा कि निर्णय के पैरा 34 में संक्षेपित कानून के सिद्धांतों से देखा जा सकता है, जो इस प्रकार है: -

"34. चर्चा और विश्लेषण से, निम्नलिखित सिद्धांत उभरते हैं:

(क) रिट अधिकार पृच्छा को छोड़कर, पीआईएल सेवा मामलों में अनुरक्षणीय नहीं है।

(ख) अधिकार पृच्छा रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय को यह संतुष्ट होना होगा कि नियुक्ति वैधानिक नियमों के विपरीत है।

(ग) सरकारी सेवा में किसी पद पर नियुक्ति के लिए किसी अभ्यर्थी की

उपयुक्तता या अन्यथा का निर्धारण नियुक्ति प्राधिकारी का कार्य है, न्यायालय का नहीं, जब तक कि नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों/नियमों के विपरीत न हो।

20. वर्तमान रिट याचिका एक जनहित याचिका नहीं है। यह अधिकार पृच्छा के जारी करने के लिए दायर की गई है। तीसरे प्रत्यर्थी की नियुक्ति यूजीसी विनियम 2010 के विपरीत है, जिसे तमिलनाडु डॉ अंबेडकर लॉ यूनिवर्सिटी द्वारा अपनाया गया है और बार काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा कानूनी शिक्षा के नियम, 2008 में स्वीकार किया गया है। सरकार द्वारा तैयार किए गए

तदर्थ नियमों को केवल यूजीसी विनियम 2010 के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। इसलिए, रिट याचिका रखरखाव योग्य है और तीसरे प्रत्यर्थी की नियुक्ति को खारिज करने योग्य है। तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है और सरकारी लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल के पद पर तीसरे प्रत्यर्थी को पदोन्नत करने के लिए जी.ओ. एमएस. सं. 241, विधिक (एलएस) विभाग, दिनांक 17.6.2011 के आदेश को खारिज कर दिया जाता है। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा। परिणामस्वरूप, संबंधित विविध याचिका बंद कर दी गई है।

20. इस न्यायालय की राय में याचिकाकर्ता, एक बाहरी व्यक्ति होने के बावजूद, यूजीसी विनियमों के उल्लंघन में की गई नियुक्ति पर सवाल उठाने के लिए आवश्यक अधिकार रखता है, जो वैधानिक शक्ति रखते हैं।

21. गुण-दोष के आधार पर, 2000 यूजीसी विनियमों के प्रासंगिक भाग, अर्थात् खंड 1.3.1 को उद्धृत करना उपयोगी है, जिसका उल्लंघन इस मामले में आरोपित किया गया है:

"1.3.1 मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, वाणिज्य, शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, विदेशी भाषा और कानून।

1.3.1 प्रोफेसर:

उच्च गुणवत्ता वाले प्रकाशित कार्य के साथ एक प्रतिष्ठित विद्वान, सक्रिय रूप से अनुसंधान में संलग्न, स्नातकोत्तर शिक्षण में 10 वर्ष का अनुभव, और/या विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में अनुसंधान में अनुभव, जिसमें डॉक्टरेट स्तर पर अनुसंधान का मार्गदर्शन करने का अनुभव भी शामिल हो।

अथवा

स्थापित प्रतिष्ठा के साथ उत्कृष्ट विद्वान जिसने ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।"

विज्ञापन (डीएवीपी 1439(4) 2005), जिसके माध्यम से शोध प्रोफेसर के पद की घोषणा की गई थी, इस न्यूनतम आवश्यकता का पालन करता है, और खंड 1.3.1 को प्रतिध्वनित करता है। इसलिए, आईएलआई द्वारा विज्ञापित आवश्यकताओं और 2000 यूजीसी विनियमों के बीच असंगति का कोई सवाल ही नहीं उठता है। न ही यह विवादित है कि वर्तमान मामले में लागू प्रासंगिक खंड, खंड 1.3.1 है जो विधि में प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को निर्धारित करता है। हालाँकि वर्तमान में विचाराधीन पद का शीर्षक 'शोध प्रोफेसर' है, क्योंकि आईएलआई एक शोध आधारित संस्था है, न कि शिक्षण आधारित संस्था, यूजीसी के मानदंड उन सभी विधि प्रोफेसरों पर समान रूप से लागू होते हैं, जिन्हें यूजीसी विनियम लागू करने वाले संस्थानों में नियुक्त किया जाता है, यानी इस मामले में आईएलआई। जबकि एक विशेष संस्था अपनी आंतरिक विशेषताओं के आधार पर, उम्मीदवारों के लिए विशेष आवश्यकताओं पर अलग-अलग जोर देने का विकल्प चुन सकती है, तथ्य यह है कि 2000 यूजीसी विनियमों में निर्धारित सभी न्यूनतम योग्यताओं का अनिवार्य रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए। वास्तव में, न तो श्री शिवकुमार के विद्वान अधिवक्ता और न ही आईएलआई ने यह तर्क दिया है कि इस मामले में यूजीसी विनियम लागू नहीं होते हैं।

22. खंड 1.3.1, जो इस मामले में नियंत्रक है, दो समानांतर रास्ते प्रदान करता है: या तो "एक प्रतिष्ठित विद्वान होना चाहिए, जिसके पास उच्च गुणवत्ता का प्रकाशित कार्य हो, जो सक्रिय रूप से अनुसंधान में लगा हो, जिसके पास स्नातकोत्तर शिक्षण में 10 वर्ष का अनुभव हो, और/या विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में अनुसंधान का अनुभव हो, जिसमें डॉक्टरेट स्तर पर अनुसंधान का मार्गदर्शन करने का अनुभव भी शामिल हो, या एक स्थापित प्रतिष्ठा वाला उत्कृष्ट विद्वान होना चाहिए जिसने ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया हो।" खंड 1.3.1 के भीतर विभाजक 'या' दोनों में से किसी भी आवश्यकता को पूरा करने की अनुमति देता है। जबकि कुछ आवश्यकताएँ वस्तुनिष्ठ जाँच के अधीन हैं (जैसे कि शिक्षण/शोध के 10 वर्ष के अनुभव की न्यूनतम आवश्यकता है या नहीं), अन्य कारक (जैसे कि क्या उम्मीदवार उच्च गुणवत्ता के प्रकाशित कार्य के साथ एक प्रतिष्ठित विद्वान है, या स्थापित प्रतिष्ठा वाला एक उत्कृष्ट विद्वान है जिसने ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है) व्यक्तिपरक हैं, जिसमें प्राथमिक निर्णय चयन समिति के पास है, और इस संबंध में न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित है। इस प्रकार, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने हरि बंश लाल बनाम सहोदर प्रसाद महतो एवं अन्य, 2010 (9) एससीसी 655 में माना है,

15. किसी पद पर नियुक्ति के लिए किसी अभ्यर्थी की उपयुक्तता या अन्यथा का निर्धारण नियुक्ति प्राधिकारी का कार्य है, न्यायालय का नहीं, जब तक कि नियुक्ति वैधानिक प्रावधानों/नियमों के विपरीत न हो।"

23. न्यायालय द्वारा *अधिकार पृच्छा* के रिट पर विचार करते समय की जाने वाली सीमित जांच यह नहीं है कि क्या शिवकुमार इस पद के लिए अधिक योग्य उम्मीदवार थे, बल्कि यह है कि क्या उन्हें खंड 1.3.1 द्वारा अयोग्य ठहराया गया था, अर्थात् क्या उनकी योग्यता यूजीसी विनियमों द्वारा लगाए गए न्यूनतम वैधानिक मानदंड से कम थी।

24. न्यायालय इस तथ्य से परिचित है कि शिवकुमार के आवेदन में, प्रविष्टि 17(क) के विरुद्ध दाखिल विवरण के अंतर्गत यह दर्शाया गया है कि उनके पास कुल 11 वर्ष और 1 माह का स्नातकोत्तर शिक्षण अनुभव है, तथा प्रविष्टि 17(बी) के अंतर्गत यह दर्शाया गया है कि उनके पास 6 वर्ष और 7 माह का शोध अनुभव है, इसके अतिरिक्त आवेदन के अनुलग्नक II में उनकी शोध गतिविधियों का विवरण दिया गया है, जिसमें 1992 से लेकर आवेदन प्रक्रिया के वर्ष अर्थात् 2005 तक उनके विभिन्न शोध प्रकाशन और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रस्तुत किए गए शोधपत्रों का विवरण है।

25. डॉ. शिवकुमार जिन संस्थानों में कार्यरत रहे हैं, वहां से सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत प्राप्त विभिन्न प्रतिक्रियाओं से निम्नलिखित विवरण सामने आते हैं:

- (क) पश्चिम बंगाल राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय से प्राप्त आरटीआई के जवाब में दिनांक 03.02.2010 को एक पत्र में कहा गया कि डॉ. शिवकुमार ने कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया, और इसके अलावा, वह 20.05.2003 से 19.10.2003 तक "व्याख्याता" के रूप में कार्यरत थे।

- (ख) हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय विश्वविद्यालय से प्राप्त आरटीआई के जवाब में दिनांक 15.02.2010 को लिखा गया पत्र बताता है कि डॉ. शिवकुमार 20.10.2003 से 18.02.2006 तक *तदर्थ* आधार पर एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थे, तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम पढ़ाते थे।
- (ग) केरल विधि अकादमी से प्राप्त आरटीआई के जवाब में दिनांक 26.03.2010 को लिखा गया पत्र बताता है कि वह 01.06.1996 से 19.05.2003 तक "व्याख्याता" के रूप में कार्यरत थे, तथा उन्होंने कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया।

26. डॉ. शिवकुमार ने इन तथ्यों का विरोध किया है, जिन्होंने इन तथ्यों का खंडन करने के लिए कई दस्तावेज पेश किए हैं। सबसे पहले, केरल विधि अकादमी का दिनांक 01.08.1994 का एक पत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिसमें कहा गया कि

“श्री एस शिवकुमार ... को इस शैक्षिक एजेंसी के तहत केरल विधि अकादमी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम में 1.8.1994 से 2200-75-2800-100-4000 रुपये के वेतनमान में 2,200 रुपये प्रति माह के वेतन पर व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया है ...”

27. इसकी पुष्टि केरल विधि अकादमी कॉलेज के प्रिंसिपल द्वारा केरल विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार को लिखे गए दिनांक 01.08.1994 के पत्र से होती है।

“इस कॉलेज में नियुक्त व्याख्याता से संबंधित दस्तावेजों को विश्वविद्यालय के अनुमोदन के लिए अग्रेषित करना [विशेष रूप

से, कार्यालय आदेश संख्या स्टाफ/अनुमोदन/94, दिनांक
15.7.1994]]”

इसके बाद केरल विश्वविद्यालय का एक पत्र आता है, दिनांक
03.10.1994, संख्या एसी.एफ.आई 1/3159/94, जिसमें कहा गया है कि:

“XXXXXXXX XXXXXX XXXXXX”

31.8.1994 को आयोजित निजी कॉलेज के शिक्षण/गैर-शिक्षण
कर्मचारियों पर स्थायी समिति की सिफारिशों के अनुसार,
1.8.1994 से प्रभावी होने वाले लॉ अकादमी लॉ कॉलेज
तिरुवनंतपुरम में व्याख्याता के रूप में श्री एस. शिवकुमार की
नियुक्ति को मंजूरी दी गई है...”

इसकी पुष्टि 20.08.1997 और 13.03.1998 के दो प्रमाणपत्रों से भी होती है,
जिसमें कहा गया है कि शिवकुमार 01.08.1994 से पूर्णकालिक व्याख्याता थे।
अंत में, डॉ. शिवकुमार ने 25.02.2005 का एक पत्र प्रस्तुत किया है, जिसमें
कहा गया है कि "उनके त्यागपत्र को स्वीकार करते हुए उन्हें 19.5.2003 से
हमारी सेवा से मुक्त कर दिया गया है।"

28. यदि इन पत्रों को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर लिया जाए (और जिसकी
वैधता पर याचिकाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गई है), तो यह केरल
विधि अकादमी के आरटीआई जवाब का स्पष्ट रूप से खंडन करता है कि डॉ.
शिवकुमार ने 01.06.1996 से 19.05.2003 तक पढ़ाया। बल्कि, इन पत्रों और

प्रमाणपत्रों से पता चलता है कि डॉ. शिवकुमार की नियुक्ति 01.08.1994 को हुई थी। इसके अलावा, डॉ. शिवकुमार ने केरल विश्वविद्यालय के परीक्षा नियंत्रक द्वारा उन्हें संबोधित 15.05.1999 का एक पत्र प्रस्तुत किया है, जिसमें कहा गया है:

“मैं द्वितीय वर्ष/एलएलएम डिग्री परीक्षा अप्रैल 1999 के नियम — कानून — की उत्तर पुस्तिकाओं की फाइल सं. 1832 से 1838 तक की उत्तर पुस्तिकाओं को प्रथम मूल्यांकन के लिए भेज रहा हूँ। कृपया उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करें और अंकतालिकाओं को 2.6.99 से पहले अध्यक्ष को भेजें ...

29. फिर से, इस पत्र को सच मानते हुए, और याचिकाकर्ता द्वारा इसकी प्रामाणिकता पर संदेह करने का कोई कारण सामने नहीं लाया गया है, यह पत्र केरल विधि अकादमी से आरटीआई प्रतिक्रिया में दिए गए उस कथन का खंडन करता है कि शिवकुमार ने कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया, क्योंकि पत्र में शिवकुमार को एलएलएम डिग्री (यानी स्नातकोत्तर) के पेपर सही करने का निर्देश दिया गया है। न्यायालय को पता है कि परीक्षक के रूप में काम करने की एक पूर्व शर्त यह होगी कि शिक्षण स्टाफ का संबंधित सदस्य या तो पेपर सेट करने का हकदार होगा, या कम से कम विषय या पाठ्यक्रम पढ़ाने का हकदार होगा। दरअसल, अप्रैल/मई, 2002 के एलएलएम डिग्री परीक्षाओं के लिए प्रशासनिक कानून पाठ्यक्रम के लिए परीक्षा नियंत्रक के दिनांक 10.06.2002 के पत्र के रूप में स्नातकोत्तर पत्रों को चिह्नित करने का एक और अनुरोध रिकॉर्ड किया गया है। वास्तव में, इस दावे को अन्य प्रमाण पत्र द्वारा पर्याप्त

रूप से पुष्ट किया गया है, जिसे इन कार्यवाहियों में चुनौती नहीं दी गई है, और इसे डॉ. वी. सोभा, पूर्व प्रोफेसर और प्रमुख, पर्यावरण विज्ञान विभाग, केरल विश्वविद्यालय द्वारा, दिनांक 19.06.2012 को जारी किया गया, जिसमें कहा गया है कि:

"डॉ. एस शिवकुमार, व्याख्याता, केरल विधि अकादमी लॉ कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, अगस्त 1995 से मार्च 2003 तक केरल विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान विभाग में एमएससी (पर्यावरण विज्ञान) और एमफिल (पर्यावरण विज्ञान) पाठ्यक्रमों के लिए पर्यावरण विधान पेपर पढ़ाने में संलग्न थे।

30. इसके अलावा, केरल विधि अकादमी के अतिथि संकाय, प्रोफेसर एस. नागप्पन नायर के 24.12.2012 के प्रमाण पत्र से भी पुष्टि होती है कि उन्होंने 1994 से 2003 तक डॉ. शिवकुमार के साथ कॉलेज में एलएलएम छात्रों को 'विधायी प्रक्रिया' नामक पेपर पढ़ाया था; एक तथ्य जिसकी पुष्टि 21.08.1996 को केरल विश्वविद्यालय के सिंडिकेट की 9वीं बैठक के प्रारंभिक मिनटों से भी होती है, जो परिशिष्ट XI में एजेंडा पर मद सं. 75 (यानी *"पर्यावरण विज्ञान का विश्वविद्यालय विभाग - अतिथि व्याख्याताओं के नामों के पैनल की मंजूरी और उनके पारिश्रमिक के संबंध में"*) के संबंध में एमएससी और एमफिल पाठ्यक्रमों, यानी दोनों स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के शिक्षण के लिए क्रम सं. 12 पर शिवकुमार का नाम दर्ज करता है।

31. जहां तक कोलकाता में राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय में शिवकुमार के कार्यकाल का सवाल है, उन्होंने डॉ. सुरजीत सी मुखोपाध्याय से

दिनांक 17.05.2012 को जारी किया गया 'सेवा प्रमाणपत्र' रिकार्ड में लाया है, जिसमें कहा गया है:

“यह प्रमाणित किया जाता है कि डॉ. एस शिवकुमार 20.5.2003 से 19.10.2003 तक पश्चिम बंगाल राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय, कोलकाता में विधि के सहायक प्रोफेसर के रूप में अध्यापन संकाय में थे।

उन्होंने इस विश्वविद्यालय में अपने प्रवास के दौरान एलएलबी और एलएलएम दोनों छात्रों को पढ़ाया।”

32. इस प्रकार, यह पत्र उस आरटीआई जवाब का खंडन करता है जिसमें दावा किया गया है कि डॉ शिवकुमार ने कोई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया।

33. जहां तक हिदायतुल्लाह राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में कार्यकाल की बात है, शिवकुमार द्वारा अपने आवेदन में दर्ज विवरण, 20.10.2003 से 18.02.2006 तक एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में उनकी नियुक्ति के संबंध में, जिन्होंने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम पढ़ाए थे, आरटीआई प्रतिक्रिया से ही प्रमाणित होता है, साथ ही विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा 18.02.2006 को जारी प्रमाण पत्र से भी प्रमाणित होता है, जो 20.10.2003 से उनकी नियुक्ति की पुष्टि करता है। इसी तरह, डॉ. शिवकुमार द्वारा प्रविष्टि 17(ख) के तहत “शोध अनुभव” शीर्षक के तहत दर्ज विवरण के संबंध में, याचिकाकर्ता ने इस दावे का खंडन करने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है कि डॉ. शिवकुमार 4 वर्ष और 9 महीने की अवधि के लिए केरल विश्वविद्यालय में “अतिरिक्त

ड्यूटी" पर "मान्यता प्राप्त शोध मार्गदर्शक" थे, और 1 वर्ष और 10 महीने की अवधि के लिए हिदायतुल्लाह राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में "अतिरिक्त ड्यूटी" पर "परियोजना समन्वयक" थे। डॉ. शिवकुमार द्वारा अपने आवेदन के साथ संलग्न "अकैडेमिक प्रोफाइल" में दिए गए अन्य विवरणों (अर्थात विभिन्न प्रकाशन और सम्मेलन) का भी याचिकाकर्ता द्वारा खंडन नहीं किया गया है। इस प्रकार, उन दो विश्वविद्यालयों में उनके संचयी 6 वर्ष और 7 महीने के शोध अनुभव की पुष्टि होती है।

34. उपरोक्त पृष्ठभूमि और न्यायालय के समक्ष उपलब्ध दस्तावेजी सबूतों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय के ऐसे कार्यों की समीक्षा करने के अधिकार की सीमाएँ महत्वपूर्ण हैं और उन्हें याद रखने की आवश्यकता है। अपने अनुच्छेद 226 के क्षेत्राधिकार में, न्यायालय को "प्राथमिक निर्णय निर्माता" (यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम जी. गणयुथम (मृत) वि.प्र के माध्यम से , एआईआर 1997 एससी 3387) नहीं बनना चाहिए, बल्कि, अपने निर्धारण में विनम्र बने रहना चाहिए। राजेश अवस्थी बनाम नंद लाल जायसवाल और अन्य 2013 (1) एससीसी 501 में यह दोहराया गया था कि न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में केवल सार्वजनिक कार्यालयों में नियुक्तियों की पात्रता और वैधता से संबंधित है, न कि व्यक्तिगत उम्मीदवारों की उपयुक्तता से। अन्य निर्णयों (आर. के. जैन बनाम भारत संघ व अन्य 1993 (4) एससीसी 119; डॉ. दुर्योधन साहू व अन्य इत्यादि बनाम जितेंद्र कुमार मिश्रा व अन्य 1998 (7) एससीसी 273, दत्ताराज नाथूजी थावरे

बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, 2005 (1) एससीसी 590, और अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य, 2004 (3) एससीसी 349) ने घोषित किया है कि सेवा मामलों में कोई जनहित याचिका नहीं हो सकती है। इस प्रकार, स्पष्ट मामलों को छोड़कर जहां अधिकार पृच्छा की रिट जारी की जा सकती है, न्यायालय सार्वजनिक या इस तरह के कार्यालयों में नियुक्तियों की "योग्यता की समीक्षा" का कार्य अपने ऊपर नहीं ले सकते हैं (सेंटर फॉर पब्लिक इंटरैस्ट लिटिगेशन और अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई) व अन्य, 2011 (4) एससीसी 1.

35. इस मामले में, आईएलआई के उपनियमों के तहत गठित चयन समिति ने मामले को ठीक से समझा और शोध प्रोफेसर के पद को भरने का काम सौंपा। ऐसा करते हुए, समिति ने विभिन्न विवरण मांगे (जैसा कि शिवकुमार और चार अन्य उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत किया गया था), और उम्मीदवार अपने शोध और शिक्षण अनुभव पर अपनी प्रस्तुतियाँ देने के लिए समिति के समक्ष उपस्थित हुए। इसके आधार पर, और समिति के समक्ष साक्ष्य की सराहना के बाद, शिवकुमार को शोध प्रोफेसर के रूप में नियुक्त करने का निर्णय लिया गया। वास्तव में, याचिकाकर्ता यह दावा नहीं करता है, और न ही रिकॉर्ड में ऐसी कोई सामग्री है, जो यह इंगित करती हो कि चयन समिति ने अपने समक्ष उपस्थित तथ्यों पर विचार नहीं किया, या निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसी बाह्य या अप्रासंगिक विचार ने भूमिका निभाई, जिससे अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक हो। बल्कि, दावा यह है कि

चयन समिति के सामने प्रस्तुत तथ्य झूठे थे, और न्यूनतम वैधानिक आवश्यकताओं, या अधिक सटीक रूप से, यूजीसी विनियमों में आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया था। इस बिंदु को सर्वोच्च न्यायालय ने *सैंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन और अन्य* (पूर्वोक्त) में मान्यता दी थी, जहां न्यायालय ने कहा था कि:

"42..... न्यायिक समीक्षा का संबंध इस बात से है कि क्या पदधारी के पास नियुक्ति के लिए योग्यताएं थीं और जिस तरीके से नियुक्ति की गई, या क्या अपनाई गई प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित थी

XXXXXX

XXXXX

XXXXXX

45. हम दोहराते हैं कि सरकार अपने द्वारा लिए गए निर्णय के लिए न्यायालयों के प्रति जवाबदेह नहीं है, लेकिन न्यायिक समीक्षा क्षेत्राधिकार के अंतर्गत चुनौती दिए जाने पर सरकार अपने निर्णय की वैधानिकता/वैधता के संबंध में न्यायालयों के प्रति जवाबदेह है।" (जोर दिया गया)।

36. इस प्रकार, सवाल यह है कि क्या डॉ. शिवकुमार ने खंड 1.3.1 के तहत निर्दिष्ट बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेजी प्रमाण पर विश्वास किया जाए, तो डॉ. शिवकुमार के पास 2000 के विनियमों के तहत आवश्यक संचयी दस वर्षों का शिक्षण या शोध अनुभव नहीं था, जबकि यदि डॉ. शिवकुमार के दस्तावेजी प्रमाण पर विचार किया जाए, तो यह आवश्यकता स्पष्ट रूप से पूरी होती है। विशेष रूप से, जैसा कि इस मामले में है, जब तथ्य के प्रश्न न्यायालय के समक्ष आते हैं, और तथ्यों के विरोधाभासी संस्करण प्रस्तुत किए जाते हैं, तो

न्यायालय को सावधानी से काम करना चाहिए। इस पर सर्वोच्च न्यायालय ने मेसर्स श्री सीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 1990 (3) एससीसी 223 में विचार किया था:

"47. जहां कानून का कोई सवाल हो, वहां न्यायालय अपने स्वतंत्र निर्णय पर आक्षेपित निर्णय की कठोरता का निर्धारण कर सकता है। यदि प्राधिकारी का निर्णय न्यायालय द्वारा सही माने जाने वाले निर्णय से सहमत नहीं है, तो प्राधिकारी द्वारा कानून का निष्कर्ष उल्टा हो सकता है। जहां यह तथ्य का निष्कर्ष है, वहां न्यायालय केवल निष्कर्ष की तर्कसंगतता की जांच करता है। जब वह निष्कर्ष तर्कसंगत और साक्ष्य पर आधारित पाया जाता है, इस अर्थ में कि सभी प्रासंगिक सामग्री को ध्यान में रखा गया है और किसी भी अप्रासंगिक सामग्री ने निर्णय को प्रभावित नहीं किया है, और निर्णय ऐसा है जो ऐसे साक्ष्य के आधार पर कार्य करने वाला कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति ले सकता है, तो न्यायिक समीक्षा समाप्त हो जाती है, भले ही निष्कर्ष जरूरी नहीं कि वही हो जो न्यायालय तथ्यों के निर्णायक के रूप में ले सकता है।"

37. इस मामले में प्राथमिक निर्णय लेने वाला प्राधिकरण चयन समिति थी, जिसने डॉ. शिवकुमार द्वारा प्रस्तुत प्रमाणपत्रों और अन्य दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उन्होंने बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया है। बेशक अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही साक्ष्य और अभिवचनों के नियमों को शिथिल करती है और न्यायालय साक्ष्य पर उदारतापूर्वक विचार कर सकता है और न्यायिक समीक्षा पर ऊपर उल्लिखित सीमाओं के बावजूद, पात्रता की कमी का सवाल निस्संदेह न्यायिक समीक्षा के

दायरे में आता है, लेकिन तथ्य के सही निष्कर्ष पर पहुंचने से जुड़ी कठोरता को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य के विवरण पर विचार न करके मिटाया नहीं जा सकता है। वास्तव में, अनुच्छेद 226 याचिका के तहत तथ्य के विवादित प्रश्नों पर विचार करने में निहित सीमाएं, न केवल तथ्यों के निष्कर्षों के संबंध में न्यायिक समीक्षा की सीमित प्रकृति से उत्पन्न होती हैं, बल्कि समान रूप से, और महत्वपूर्ण रूप से, इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं कि:

"12..... अधिकार पृच्छा रिट जारी करना विवेकाधीन है और ऐसी रिट केवल इस स्पष्ट निष्कर्ष पर ही जारी की जानी चाहिए कि सार्वजनिक कार्यालय में नियुक्ति कानून के विपरीत थी।" (अरुण सिंह उर्फ अरुण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2006) 9 एससीसी 375)

38. सबसे अच्छा, वर्तमान मामला इस बात पर विवाद का प्रतिनिधित्व करता है कि क्या शिवकुमार द्वारा अपने आवेदन में विस्तृत शिक्षण/शोध अनुभव सही हैं, और इस प्रकार, खंड 1.3.1 के तहत बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करता है। प्रत्यक्ष रूप से, और यह देखते हुए कि शिवकुमार द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों पर अविश्वास करने का कोई कारण प्रकाश में नहीं लाया गया है, साथ ही यह तथ्य भी है कि अधिकांश दस्तावेज संबंधित संस्थानों में उनकी नियुक्ति के समकालीन हैं, एक स्पष्ट और ठोस निष्कर्ष यह है कि डॉ. शिवकुमार के पास वास्तव में आवश्यक योग्यताएं नहीं थीं, रिकॉर्ड से ऐसा नहीं लगता है। वर्तमान मामले में विरोधाभासी दस्तावेज याचिकाकर्ता द्वारा चयन समिति की सिफारिशों और शिवकुमार की नियुक्ति के बहुत बाद

प्राप्त किए गए थे। वास्तव में, वर्तमान कार्यवाही में केरल विधि अकादमी द्वारा 2010 में जारी और दायर किए गए प्रमाणपत्रों की प्रकृति कुछ हद तक इसके द्वारा पहले जारी किए गए पत्रों और प्रमाणपत्रों का खंडन करती है। जबकि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि उक्त अकादमी ने पहले के पत्र जारी किए थे, जिन पर शिवकुमार वर्तमान मामले से बहुत पहले और 2000 के दशक की शुरुआत और 1999 के अंत में भरोसा करते हैं, अब दस्तावेजों (17.02.2013 के अपने शपथपत्र द्वारा समर्थित) से लगता है कि शिवकुमार अतिथि संकाय के रूप में काम कर रहे थे। न्यायालय ने निस्संदेह उक्त अकादमी को नोटिस जारी किया था और उसने अपना शपथपत्र दायर किया है। हालांकि, न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि शिवकुमार के पक्ष में जारी किए गए पिछले दस्तावेजों के संबंध में बाद के स्पष्टीकरण, विशेष रूप से कार्यवाही के दौरान, सटीक स्थिति प्रस्तुत नहीं करेंगे। अकादमी के अस्पष्ट दस्तावेजों, विशेष रूप से जिन सामग्रियों को रखने की कोशिश की गई है (शायद शिवकुमार को बदनाम करने के उद्देश्य से) पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना अनावश्यक रूप से योग्यता समीक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा, जो निषिद्ध क्षेत्र है। वर्तमान कार्यवाही में न केवल इस न्यायालय को इन दस्तावेजों की सत्यता को जिरह के माध्यम से परखने का लाभ नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण बात यह है कि चयन समिति के निष्कर्षों को, किसी भी गंभीर अनियमितता की अनुपस्थिति में, स्थगित किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में न्यायालय का कर्तव्य, जैसा कि *सेंट्रल इलेक्ट्रिसिटी सप्लाय यूटिलिटी ऑफ*

ओडिशा बनाम धोबी साहू और अन्य, 2013 (13) स्केल 477 में मान्यता प्राप्त है, इस बात पर विचार करना है कि "नियुक्ति किस प्रकार की गई या क्या अपनाई गई प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित थी", न कि इस मामले में चयन समिति द्वारा लिए गए निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए बेतरतीब जांच में संलग्न होना। मनमाने या तर्कहीन प्रक्रिया के माध्यम से निर्णय लेने के अलावा, पद के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाला सार्वजनिक विज्ञापन, दो चरणीय आवेदन प्रक्रिया (विवरण के दस्तावेजी प्रमाण के साथ लिखित आवेदन, उसके बाद मौखिक/दृश्य प्रस्तुति), तथा न्यायमूर्तिगण, अधिवक्तागण और शिक्षाविदों (अर्थात् जिस क्षेत्र में नियुक्ति की जानी है, उसके जानकार) से बनी विशेष रूप से गठित चयन समिति द्वारा विचार-विमर्श, ये सभी स्पष्ट रूप से नियुक्ति की न्यायसंगत और निष्पक्ष प्रक्रिया स्थापित करते हैं, जिसमें कोई अनियमितता या अनौचित्य नहीं है।

39. याचिकाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों पर विचार करते हुए, यह भी संभव है कि कुछ दस्तावेज सत्य सिद्ध हो सकते हैं, अन्य नहीं भी हो सकते हैं, और संचयी अनुसंधान और शिक्षण अनुभव दस वर्ष की सीमा को पूरा कर सकता है (क्योंकि 6 वर्ष और 7 महीने के अनुसंधान अनुभव से इनकार नहीं किया गया है, लेकिन केवल केरल विधि अकादमी और राष्ट्रीय विधि विज्ञान विश्वविद्यालय (न कि हिदायतुल्ला राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय) में आयोजित शिक्षण पदों के विवरण का खंडन किया गया है। क्या ऐसे मामले में संचयी

कुल अवधि दस वर्ष है, और क्या यह खंड 1.3.1 के अंतर्गत सीमा को पूरा करने के लिए पर्याप्त है, यह वास्तव में चयन समिति द्वारा निर्णय लेने और विचार करने का विषय है।

40. वास्तव में, इस मामले में एक और पहलू शिवकुमार की नियुक्ति के पक्ष में है। याचिकाकर्ता से आईएलआई को ज्ञापन मिलने के बाद, और उसने सर्वोच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका वापस ले ली, भारत के मुख्य न्यायाधीश ने रिपोर्ट मांगी। इसके परिणामस्वरूप 2006 में चयन समिति (जिसमें माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. अरिजीत पसायत, माननीय न्यायमूर्ति श्री एम.जे. राव, श्री जी.ई. वाहनवती, भारत के महान्यायवादी; प्रोफेसर परमानंद सिंह और प्रोफेसर के. एन. सी. पिल्लई शामिल थे) द्वारा जांचे गए रिकॉर्ड और सामग्री की जांच की गई। इस समिति की अध्यक्षता माननीय न्यायमूर्ति श्री अरिजीत पसायत (सेवानिवृत्त) ने की थी, तथा दिनांक 04.04.2012 की अपनी रिपोर्ट में इन्होंने कहा कि लिए गए निर्णय में कोई कमी नहीं थी तथा शिवकुमार शोध प्रोफेसर के पद पर रहने के योग्य थे। दिनांक 13.12.2013 को, आईएलआई की कार्यकारी समिति ने उक्त रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। इन विषय-वस्तुओं पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया क्योंकि सुनवाई के दौरान आईएलआई द्वारा प्रासंगिक अभिलेख प्रस्तुत किए गए थे, तथा वे प्रदर्शित करते हैं कि दस्तावेजों के कथित मिथ्याकरण के प्रश्न पर आईएलआई द्वारा विशेष रूप से विचार किया गया था तथा उसे अस्वीकार कर दिया गया था।

41. इसी तरह, न्यायालय इस तथ्य से भी अवगत है कि खंड 1.3.1 वैकल्पिक योग्यता का पता लगाता है, अर्थात् "एक उत्कृष्ट विद्वान जिसकी प्रतिष्ठा स्थापित है और जिसने ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।" यह मानक स्पष्ट रूप से चयन समिति द्वारा उसके समक्ष रखे गए वस्तुनिष्ठ कारकों/सामग्री के आधार पर व्यक्तिपरक निर्धारण को शामिल करता है। जबकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि शिवकुमार ने इस मानदंड की अपनी संतुष्टि को प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं किया, और विशेष रूप से इस शीर्षक के तहत आवेदन नहीं किया, तर्क का यह तथ्य अविश्वसनीय है। शिवकुमार ने न केवल अपने आवेदन के साथ संलग्न "अकैडेमिक प्रोफाइल" में व्यापक विवरण दर्ज किया, जो कानून में उनके योगदान को दर्शाता है, जैसे कि बारह शोध प्रकाशनों का विवरण, चार पुस्तक समीक्षाएँ, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किए गए ग्यारह शोधपत्र, साथ ही प्रस्तुत किए गए तीन शोधपत्र (हालांकि व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत नहीं किए गए), राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किए गए विभिन्न शोधपत्र, चार पुस्तक योगदानों सहित अन्य प्रकाशनों की सूची, उनके द्वारा आयोजित कार्यक्रम और लिए गए शैक्षणिक कार्य, बल्कि 2000 यूजीसी विनियमों या आईएलआई द्वारा जारी विज्ञापन के तहत उस शीर्षक के अंतर्गत विशेष रूप से आवेदन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि, खंड 1.3.1 के पाठ को निष्पक्ष रूप से पढ़ने से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि चयन समिति अपने विवेक से और प्रासंगिक कारकों पर विचार करके यह तय कर सकती है कि उम्मीदवार इनमें

से किसी भी श्रेणी में आता है। शिवकुमार के अकादमिक प्रोफाइल को पढ़ने से पता चलता है कि उनका प्रकाशन और अकादमिक जगत के साथ जुड़ाव कानूनी मुद्दों को आच्छादित करते हुए, 1992 से 2005 (यानी आवेदन के समय) तक फैला हुआ है। इन गतिविधियों का सटीक और विस्तृत मूल्यांकन, यानी डॉ. शिवकुमार के शैक्षणिक इनपुट और शोध, और क्या यह उन्हें “स्थापित प्रतिष्ठा वाले उत्कृष्ट शोध विद्वान के रूप में योग्य बनाता है जिन्होंने ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है”, हालांकि, यह मामला पूरी तरह से चयन समिति के निर्णय लेने के अधिकार के लिए आरक्षित है जिसमें न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। वास्तव में, चयन समिति को प्रदान किए गए अधिकारों की यह व्यापकता विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि यह उम्मीदवारों की शैक्षणिक योग्यता की उपयुक्तता पर विचार करने के लिए विशेषज्ञ निकाय के रूप में कार्य करती है, जिसकी समीक्षा इस न्यायालय को नहीं करनी चाहिए और कानून के अनुसार, वह ऐसा नहीं कर सकता है। एक बार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है, और याचिकाकर्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं करता है, कि चयन समिति ने उम्मीदवार का चुनाव करने लिए प्रासंगिक कारकों पर अपनी बुद्धिमत्ता का इस्तेमाल किया, जो उसके विचार में, शोध प्रोफेसर के पद के लिए सबसे उपयुक्त था (यानी विशुद्ध रूप से उदाहरण के तौर पर, उसकी शैक्षणिक योग्यता, पिछले शोध अनुभव, शोध प्रकाशनों की गुणवत्ता, समीक्षा आदि), और उसने अपना निर्णय अप्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं किया, तो इस न्यायालय की सीमित न्यायिक समीक्षा संतुष्ट हो जाती है। वास्तव में,

सर्वोच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने रामेश्वर दास मेहला बनाम ओम प्रकाश सैनी और अन्य, जे.टी. 2002 (2) एस.सी. 403 के मामले में, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा वर्तमान विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष के विरुद्ध जारी अधिकार पृच्छा रिट पर विचार करते हुए, इसी सटीक भावना को प्रतिध्वनित किया था:

"5..... यह भी बताया गया है कि दोनों योग्यताओं की समतुल्यता एक ऐसा प्रश्न है जो विशुद्ध रूप से शैक्षणिक मामले से संबंधित है और न्यायालय इस पर कोई निश्चित राय व्यक्त करने में संकोच करेंगे, विशेषकर तब जब विशेषज्ञों को लगे कि कोई अभ्यर्थी योग्यता पूरी करता है

XXXXXX XXXXX XXXXXX

7.....हमें नहीं लगता कि चयन समिति द्वारा लिया गया दृष्टिकोण न्यायिक समीक्षा का विषय हो सकता है जैसा कि गोविंद राव के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था। शैक्षणिक मामलों में, विशेष रूप से योग्यता से संबंधित, विशेषज्ञों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अंतिम होगा। यदि उच्च न्यायालय द्वारा यह दृष्टिकोण अपनाया गया होता, तो उच्च न्यायालय इस मामले में विश्वविद्यालय द्वारा की गई कार्रवाई में बिल्कुल भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता था....." (जोर दिया गया)

42. कम से कम, शैक्षणिक प्रोफाइल में बताए गए विभिन्न विवरण, जिनका विवरण ऊपर दिया गया है, शिवकुमार को दूसरे वैकल्पिक मानदंड के तहत शोध प्रोफेसर के पद के लिए योग्य बनाते हैं, और ऐसा होने पर, उनका आगे का चुनाव, चयन समिति के विवेक पर निर्भर करता है।

43. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि डॉ. शिवकुमार की आईएलआई में शोध प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति में कोई कमी नहीं है। इसलिए, याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। इन कार्यवाहियों की लागत 50,000 रुपये निर्धारित की गई है, जिसे आईएलआई और डॉ. शिवकुमार को चार सप्ताह के भीतर बराबर हिस्से में चुकाया जाएगा।

एस. रवींद्र भट
(न्यायाधीश)

नजमी वजीरी
(न्यायाधीश)

20, दिसंबर 2013

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।